रीवा के कटरा जैन मन्दिर की मूर्तियों पर प्रशस्तियाँ

पुष्पेन्द्र कुमार जैन
कटरा, रीवा, म० प्र०

रीवा नगरी विन्ध्य क्षेत्र का शीर्ष है। १९४८ तक यह बघेल वंशीय राजाओं की राजधानी रही। तदुपरान्त भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति पर, इसे ३६ राज्यों के एकीकरण से बने विन्ध्य प्रदेश की राजधानी बनाया गया। १ नवंबर १९५६ से राज्य पुनर्गठन आयोग की अनुशंसा पर विन्ध्य प्रदेश को मध्य प्रदेश नामक वृहत् राज्य में संविलयित किया गया। तबसे यह मध्य प्रदेश का प्रमुख संभाग है और उत्तर प्रदेश से लगने वाला प्रमुख सीमान्त क्षेत्र है। वर्तमान में इसकी जनसंख्या लगभग एक लाख है। इसके चारों ओर बाणसागर, सिंगरौली, टोंस, चुरहट एवं अन्य स्थानों पर बहुमुखी योजनायें विकसित हो रही है जिनसे यह नगरी भविष्य में भारत के औद्योगिक मानचित्र पर महत्वपूर्ण स्थान पा सकती है। कुछ ही वर्षों में यहाँ से रेल-सम्पर्क भी हो जायेगा।

राजनीतिक महत्व के साथ रीवा का शैक्षिक एवं साहित्यिक महत्व भी है। तुलनात्मकतः अल्पकाय इस नगरी में विश्वविद्यालय, चिकित्सा एवं इंजीनियरी महाविद्यालय, सैनिक एवं केन्द्रीय विद्यालय, शिक्षा एवं कृषि महाविद्यालय, शिक्षक-प्रशिक्षण विद्यालय एवं अन्य सभी प्रकार की शैक्षिक सुविधायें उपलब्ध हैं। व्यापारिक दृष्टि से यह इलाहाबाद, सतना, कटनी, जबलपुर नगरों से प्रभावित है। ऐसा कहा जाता है कि निकट भविष्य में यह अपने क्षेत्र का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बन सकेगी।

जैन समाज मुख्यतः व्यापार-प्रधान समाज है। व्यापार की अल्पता के कारण इस नगरी में जैनों ने अपना समुचित स्थान नहीं प्राप्त कर पाया। वृद्ध जैनों से जानकारी मिलती है कि आज के रीवावासी जैनों के कुछ मूल परिवार लगभग एक सौ पचास या दो सौ वर्ष पहले छतरपुर जिले से आये थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय छतरपुर जिले में कोई न कोई ऐसी घटना अवश्य हुई होगी जिससे वहाँ के जैनों को अन्यत्र जाना पड़ा हो। यह अन्वेषणीय है। जबलपुर के प्रमुख जैन परिवार भी छतरपुर-मूल के ही हैं। उनमें से कुछ की संपत्ति आज भी वहाँ है। इन मूल परिवारों के ही अनेक उपपरिवार अब रीवा में हो गये हैं। इनका प्रारम्भिक व्यवसाय वस्त्र-विक्रय एवं लेन-देन रहा है। पर कुछ वर्षों से किराना, सामान्य उपयोगी-वस्तु एवं औषध व्यवसाय में भी स्थानीय जैन लग रहे हैं। कुछ उच्चशिक्षित होकर शासकीय नियोजन में भी उच्च पदों पर कार्य कर रहे हैं।

रीवा नगर में जैनों के दो मंदिर हैं—एक कटरा में और दूसरा किला मार्ग पर। कटरा का मन्दिर लगभग दो सौ वर्ष पुराना है। किला मार्ग का मन्दिर लगभग ३०–३५ वर्ष पुराना है। कटरे के मन्दिर में दो वेदियाँ हैं। एक वेदी पर मऊगंज के हिलकी ग्राम से प्राप्त १००८ भगवान् शान्तिनाथ की खड्गासन मूर्ति है। उसके साथ कुछ अन्य मूर्तियाँ भी है। इस वेदी का निर्माण वीर निर्वाण संवत् २४४१ (१९१४) में किया गया था। इस विशालकाय आकर्षकमूर्ति पर कोई लेख उत्कीर्ण नहीं है। ऐसी ही एक मूर्ति सतना के दिगम्बर जैन मन्दिर में है। इन मूर्तियों के प्रति जैनों में बड़ा श्रद्धाभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटरा जैन मन्दिर की दूसरी वेदी का निर्माण बहुत पुराना नहीं है, फिर भी इस पर विराजमान अनेक धातुमय, पाषाण एवं संगमरमर की ३२ मूर्तियों में संवत् १६९४ (१६३७ ई०) से लेकर सन् १९५५ तक की प्रतिष्ठित मूर्तियाँ हैं। इनमें एक पीतल की चौबीसी भी है। इनमें अनेक मूर्तियाँ पर महत्वपूर्ण लेख हैं जिनसे तत्कालीन भट्टारक परम्परा एवं जैन कुल परम्पराओं का पता चलता है। प्रस्तुत विवरण में इनमें से कुछ मूर्तियों पर टंकित महत्वपूर्ण लेख दिये जा रहे हैं।

पीतल की चौबीसी का लेख

इस चौबीसी का लेख इस वेदी की प्रतिमाओं में सबसे प्राचीन है। यह लेख सं० १६९४ (१६३७ ई०) का है : संवत् १६९४ वैसाख वदी ६ बुध, भट्टारक ललित कीर्ति, तत्पट्टे भट्टारक धर्मकीर्ति, तत्पुत्र सकलचंद्र भट्टारक आचार्य श्री पद्मकीर्ति तत्पट्टे गुणकरमे, हजरतशाह उग्रसेन मूल संघे बलात्कार गणे धनामूर कासल्ल गोत्र राधोबा, आशादास, द्वारिकी तत्पुत्र राममनोहर स० वन्दे प्रणमति लेखक हीरार्मान।

इस लेख में ललितकीर्ति, धर्मकीर्ति, सकलचन्द्र, पद्मकीर्ति एवं गुणकर भट्टारकों की परंपरा दी गई है। यही परंपरा छतरपुर के चौधरी मंदिर की मेरु प्रशस्ति (१२२४) में कुछ परिवर्तन के साथ है। साथ ही राधोबा आशादास के मूर-गोत्र देने से ज्ञात होता है कि यह चौबीसी पौरपट्टान्वयी भक्त ने प्रतिष्ठित कराई है। इसमें प्रतिष्ठा या प्रतिष्ठापक का स्थान—विशेष उल्लिखित नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस लेख के भ० ललितकीर्ति दिल्ली गद्दी के १८६१ के भट्टारक से भिन्न है।

पद्मासन पार्श्वनाथ की मूर्ति का लेख

यह संवत १७१३ (१६५६ ई०) का लेख है। इसमें भट्टारक परंपरा और प्रतिष्ठापक कुल-परंपरा का उल्लेख है।

संवत् १७१३ मार्गशीर्ष सुदी ४ देशस्थ रविवासरे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे दत्तंदावनान्वये तत्परायोगे भट्टारक श्री ललितकीर्ति तत्पट्टे धर्मकीर्ति देवजू, तत्पट्टे पं० पद्मकीर्ति देव ..... पं० सकलकीर्ति गुरूपदेशात् पौरपट्टे अष्टसाखान्वये सं० ग्राहकदास चौ० फड़न समावते पं० श्री द्वारकादास सं० परसोत्तम साहू बहे चोपड़ागामे निरमौली कपूरचंद ८४ नली सौ० वनिता भवि तदैतत् प्रणमति। चतुरनसिंह कमलकली जगोले रामचंद्र प्रणोति सः एतत् प्रणमति।

इस लेस में ललितकीर्ति, धर्मकीर्ति, पद्मकीर्ति और सकलकीर्ति (पं०) की परंपरा दी गई है। नेमचंद्र शास्त्री के अनुसार धर्मकीर्ति का समय १५८८–१६२५ ई० माना जाता है। इस आधार पर पं० सकलकीर्ति का और प्रतिष्ठा का समय भी सही बैठता है। लेकिन पं० सकलकीर्ति एवं पद्मकीर्ति के विषय में पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है। यह मूर्ति भी चोपड़ा ग्राम के अष्टशाखान्वयी पौरपट्ट भक्त ने प्रतिष्ठित कराई थी।

३. पीतल के मानस्तंभ पर लेख

यह लेख सं० १८७१ (१८१४ ई०) का है। इसमें भट्टारक परंपरा तो नहीं दी गई है, पर चन्द्रपुरी भट्टारक का नाम अवश्य है। प्रतिष्ठापक भक्त के गोत्र मूर से उसका पौरपट्टान्वयी होना सिद्ध होता है।

सं० १८७१ फागुन वदी ४ श्री मूलसंघे सरस्वतीबलात्कारगणे श्री आचार्य कुंदकुंदान्वये मखावली चंद्रपुरी भट्टारक जी श्री चौधरी उमरावजी, चौधरी कुंवर जू पद्मामूरी कोछल्ल गोत्र हटा धीवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. १८७२ की दो प्रतिष्ठित मूर्तियों पर पूर्ण विवरण नहीं है। फिर भी वहां चौधरी उमराव, मधु कुंवर, बहादुर कुंवर के नामों के साथ अमान सिंह का भी उल्लेख है।

५. एक पद्मासन मूर्ति पर केवल १५६८ मूलसंघे वैसाख सुदी ९ प्रणमतिश्री भर उत्कीर्ण है।

६. अन्य अनेक मूर्तियों पर केवल तिथि और संवत् मात्र अंकित है।

जैन[1] ने छतरपुर के मंदिरों की मूर्तियों के लेखों का संकलन किया है। उन लेखों को देखने पर ज्ञात होता है कि रीवा की मूर्तियों की तुलना में वहां मूर्तियों की प्रतिष्ठा का समय-परिसर सं० ११०२–१९८० तक जाता है। पर रीवा में प्राप्त १६९४, १७१३ एवं १९७१–७२ के लेखों के समान ही छतरपुर की तत्कालीन मूर्तियों पर लेख पाये जाते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि संभवतः ये मूर्तियां उसी क्षेत्र से यहां आई हों। इस विषय में पुरातत्वतों एवं इतिहास-विदों द्वारा अन्वेषण आवश्यक है।

संदर्भ

१. जैन, कमलकुमार; जिनमूर्ति प्रशस्ति संग्रह, बड़ा मंदिर, छतरपुर, १९८२

हमारा शरीर स्थूल है, किंतु इसमें गजब की सूक्ष्मता है। हमारा मस्तिष्क शरीर का केवल दो प्रतिशत भाग है लेकिन इसमें एक खरब 'न्यूरान्स' हैं। हमारे शरीर में साठ खरब कोशिकायें हैं। ये स्वनियंत्रित हैं। शरीर में विद्यमान ज्ञानतंतुओं के जाल को यदि एक रेखा में बिछाया जाय, तो वे एक लाख वर्गमील तक पहुँच जाते हैं। ये ज्ञानतंतु हमारी विद्युत् के संवाहक हैं। हम अपने शरीर को अभी भी पूरे तौर से नहीं जान पाये हैं। जब हम स्थूल शरीर को ही पूरा नहीं जानते, तो फिर सूक्ष्म शरीर की बात तो दूर ही रही। आत्मा के जानने की बात तो और भी सुदूर होगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org